वहाबी मत का सत्य

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी

सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : (11)

दूसरी बात यह कि "जो क़ब्र ऊँची देखो उसे बराबर कर दो" इसका अर्थ यह है कि खुद क़ब्र ऊँची हो जैसी ईसाइयों की क़ब्रें होती हैं या मुसलमानों के भी एक वर्ग में ऊँट की पीठ के उभार की तरह ऊपर उठी हुई क़ब्रें बना दी जाती हैं, तो उन क़ब्रों को ऊपर से बराबर कर देने का हुक्म हो तो इस आदेश से उन पर कोई असर नहीं पड़ता जो क़ब्रें पहले से ही समतल बनायी जाती हैं मगर उनके चारों ओर इमारत बनाई गई हो या गुम्बद का निर्माण किया गया हो जैसा कि धर्म के इमामों या नबियों की क़ब्रें होती हैं, हदीस का सम्बन्ध उन क़ब्रों से नहीं है। सच्चाई यह है कि स्वयं क़ब्रों की बनावट में मतभेद है। अहले सुन्नत में अधिकतर ऊँट की पीठ के उभार की तरह ऊँची क़ब्र बनायी जाती है, लेकिन इमामिया (शिया) वर्ग जोकि इमामों की शिक्षाओं पर आधारित है और शाफ़ई फ़िक़्ह में क़ब्र को समतल बनाया जाता है। यह हदीस उससे सम्बन्धित है। शैख हुर्र आमिली जो बड़े आलिम थे उन्होंने हदीसों की अपनी बड़ी किताब "वसाइलु श शीआ" में उसे 'तस्तीहु क़ब्र' (क़ब्र का बराबर करना) के अध्याय में लिखा है और मुहदिदस नूबवी ने भी जो बड़े सुन्नी उलमा में है यही अर्थ समझा। सहीह मुस्लिम की व्याख्या में इस हदीस की व्याख्या में लिखा गया है कि:

"सुन्नत (रसूल[स0] का चलन/सदावृत्ति) यह है कि क़ब्र ज़मीन से ज्यादा ऊँची न हो और उसे ऊँट की पीठ के उभार की तरह का बनाया जाए बल्कि बस एक बालिश्त ऊँची रखी जाए और यही शाफ़ई और उनके सहमत उलमा का पन्थ है।" कस्तलानी ने भी शरहे सहीह बुखारी में इसे क़ब्रों के समतल करने के तर्को में लिखा है और कहा है कि इस हदीस में क़ब्रों के बराबर करने के मायने यह नहीं हैं कि उन्हे भूमि तल के बराबर कर दिया जाय बल्कि उसका अभिप्राय यही है कि उन्हें समतल कर दिया जाय।

सच्चाई यह है कि "सव्वैतुहू" का अर्थ बराबर करना है यदि उसके साथ किसी और चीज़ का नाम लिया जाए तो मायने उस चीज़ के बराबर करने के होंगे। लेकिन अगर उसके साथ किसी और चीज़ का नाम न लिया जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि बस वह चीज़ अपनी जगह पर एकसी और समतल कर दी जाए। इसी से फ़ैतूमी में 'मिस्बाहुल मुनीर' में लिखा है कि 'इस्तवल मकान' के मायने यह हैं कि ये जगह बराबर और एक सी हो गयी और क़द सव्वैतुह के मायने है कि मैं ने उसे बराबर और ठीक एक सा बना दिया। इसी तरह 'क़ामूस' (अरबी भाषा का एक माना हुआ शब्दकोश) मे है। अगर वह मायने होते तो सव्वैतुहू बिल अर्ज़ कहा जाता जैसे मासूम ने कहा है कि सव्वैतुहू बिहि तस्तरैतुह और 'सव्वैतु बैनहुमा' और 'सावैतु अव अस्तरैतुह बिह' इस सब के सामने यह है कि मैंने इसको उस दूसरे के बराबर कर दिया। यहाँ हदीस में केवल "सव्वैतहू" इस्तेमाल हुआ है जिसका अर्थ वही है जो उलमा ने समझा है कि क़ब्र की बीच वाली ऊँचाई को बराबर करके उसे समतल कर दिया जाए।

यदि क़ब्र को बिल्कुल बराबर करने का हुक्म होता तो पैग़म्बर[स0] ने उस्मान बिन मज़ऊन की क़ब्र को ज़मीन से ज़रा ऊँचा क्यों रखा जैसा कि

हदीस के स्पष्ट है और एक हदीस अभी आएगी जिसमें है कि रसूले खुदा ने एक व्यक्ति को देखा जो क़ब्र से टेक लगाए बैठा है और टेक लगाना उस समय तक संभव ही नहीं है जब तक क़ब्र ज़मीन से थोड़ी ऊँची न हो।

इस निर्माण से सम्बन्धित एक चीज़ और है क़ब्र पर साया करना। वहाबी लोग इसे भी मना करते सुने गये हैं। हालाँकि इसका होना भी पैग़म्बर और सहाबियों के समय में मिलता है। इब्ने हजर की "इसाबा" में सअ़लिबा बिन मालिक की रिवायत है किः हकम बिन अबिल आस की उस्मान के दौर में मृत्यु हो गई और उस दिन बहुत कड़ी गर्मी थी तो क़ब्र पर ख़ैमा (तम्बू) लगा दिया गया इस पर लोग "कानाफूसी" करने लगे तो उस्मान ने कहा कि उमर के समय में ज़ैनब बिन्ते जहश की क़ब्र पर खैमा लगाया गया तो उस समय किसी ने आपत्ति नहीं की।''

हकम की मृत्यु सन् 32 हिजरी में हुई थी।

इसके अलावा तफ़सीरे रूहुल मआनी में है कि जनाब मुहम्मद हनफ़िया ने जनाबे इब्ने अब्बास की क़ब्र पर खैमा लगवाया और सहीह बुख़ारी में है कि जब हसन इब्ने हसन (अ0स0) का देहान्त हुआ तो उनकी धर्म पत्नी (फातिमा बिन्तुल हुसैन) ने उनकी क़ब्र पर ख़ैमा लगवाया और वहाँ एक साल तक रहीं। यह कहना कि क़ब्रों को मस्जिद बनाना और उनमें नमाज़ यह भी मना है और शायद इसका सम्बन्ध रसूल की उस हदीस से हो कि अल्लाह यहूदियों व ईसाइयों पर लानत करे कि उन्होंने अपने नबियों की क़ब्रों को मस्जिद बनाया मगर इसका सही अर्थ वह है जिसे मुहद्दिस ताहिर फतनी ने "मजमउल बिहार" में लिखा है किः

"वे लोग उन क़ब्रों को क़िब्ला बनाकर उनकी ओर हर नमाज़ में मूर्तियों की तरह सजदा (दण्डवत) किया करते थे।"

और हाफ़िज़ सुयूती ने अपनी किताब ज़हरूर्रिबा में इस हदीस की व्याख्या में लिखा है कि

"जब उनमें से कोई नेक आदमी मरता था तो उसकी क़ब्र पर मस्जिद बनाते थे।"

बैज़ावी ने लिखा है किः

"क्यों कि यहूदी और इसाई अपने नबियों की क़ब्रों का सजदा करते थे और उन्हें क़िब्ला बनाकर उनकी ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते (पूजा करते) थे और उन्हें मूर्ति बना लिया था इसलिए उन पर लानत की गई और मुसलमानों को रोका गया कि वे ऐसा न करें लेकिन अगर कोई व्यक्ति किसी नेक व्यक्ति की क़ब्र के पास मस्जिद बनाए केवल बरकत पाने के लिए और क़ब्र की ओर मुँह करके नमाज़ न पढ़े तो उसपर यह लागू होगा।"

सुनने निसाई के हाशिए (टिप्पडी) पर अल्लामा सिन्दी मदनी ने लिखा है किः

"हज़रत[स0] यह चाहते थे कि अपनी उम्मत को उस चीज़ से डराएं जो यहूदियों और ईसाइयों ने अपने पैग़म्बरों की क़ब्रों के साथ किया था कि उन्हें मस्जिद बना लिया इस तरह कि उन्हीं को सजदा करने लगे या उन्हें क़िब्ला बना लिया कि नमाज़ आदि में उन्हीं की ओर मूँह करने लगे लेकिन अगर जो क़ब्र के आसपास सवाब के लिए मस्जिद बनाए तो वह मना (निशिद्ध) नहीं है।"

पहले इसी किताब में कब्र पर मस्जिद के निर्माणके सबूत लिखे जा चुके है जैसे अस्हाबे कहेफ़ (गुफ़ा वालों) पर मस्जिद का निर्माण और फ़ातिमा बिन्ते असद की कब्र पर मस्तिद का जनाब महम्मद हनफ़िया के सामने असतित्व और दूसरी सदी हि0 में जनाब हम्ज़ा की कब्र पर मस्जिद का होना और यहाँ इसपर यह बढ़ाया जाता है कि : "कुनूजुल हक़ाएक़े मुनादी" में देलमी की रिवायत है किः "मस्जिदे ख़ीफ़ में सत्तर नबी दफ़्न हैं।"

एक दूसरे स्थान पर इसकी रिवायत तबरानी से है– इससे इब्ने क़य्यिम के उस दावे की काट हो जाती है कि इस्लाम धर्म में मस्जिद और क़ब्र एक स्थान पर नहीं हो सकते बल्कि जो बाद में हो उसे रोक दिया जाए और पहले वाले को रखा जाय। और इसकी सबसे बड़ी मिसाल मस्जिदुल हराम (काबा) है जिसके अन्दर हजरे इस्माईल में जनाबे इस्माईल और जनाबे हाजिरा की क़ब्रों का

अस्तित्व है।

एक और अर्थ उस हदीस के बारे में वह है जिसे इमाम बुखारी ने समझा है। वह अर्थ यह है कि यहूदियों और ईसाइयों ने अपने नबियों की क़ब्रों को खोद डाला और उनकी जगह मस्जिदे बना दीं तो रसूल ने उन पर लानत की है पैग़म्बरों की तौहीन के कारण। इसी से उन्होंने अपनी 'सहीह' शीर्षक लगायी है कि जाहिलियत (अज्ञान के काल–इस्लाम के पहले का अंधकार काल) के मुश्रिकों की कब्रों को खोद डाला जाय और उनकी जगह पर मस्जिदें बनादी जायें। इसके सबूत में उन्होंने यह हदीस लिखी है कि रसूल[स०] ने यहूदियों और ईसाइयों पर लानत इस बात पर की कि उन्होंने नबियों की कब्रों को मस्जिद बनाया। 'फ़तहुबारी' में इसकी व्याख्या में लिखा है।

''इस हदीस से काफ़िरों की क़ब्रों को मस्जिद बनाने पर तर्क इस आधार पर है कि रसूल[स०] ने उनपर लानत की जिन्होंने नबियों की क़ब्रों को मस्जिद बनाया और नबियों के साथ उस हुक्म में उनके अनुयायी साथ हैं जो नेक मोमिन हैं किन्तु दूसरे लोग यानी मुश्रिक लोग उन के क़ब्रिस्तानों को खोद कर मस्जिद बनाई जा सकती है।''

अगर हदीस का यह अर्थ हो तो वह वहाबी विचारधारा के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। इसलिए कि नबियों की क़ब्रों को खोद कर मस्जिद बनाने पर लानत जब नबियों के अपमान के कारण है तो फिर बिना किसी कारण के केवल अन्यायपूर्वक और बवाल से उनकी क़ब्रों को खोदना तो निश्चय ही उनका अपमान है क्यों कर लानत के योग्य न होगा? मक़बरों में नमाज़, इसके हराम (निशिद्ध) होने पर कोई दलील या तर्क नहीं है। उलमा गण इसके मकरूह (घिनावना–न किया जाये तो अच्छा है) होने को मानते हैं। वहाबियों की जो विचार है। उसके विरूद्ध अहलेबैत[अ०] और सहाबियों को करनी (कर्म) है। गज़ाली ने 'इहयाउल उलूम' में इमाम जाफ़रे सादिक़[अ०] के रवायत लिखी है कि हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स०] जनाबे हमज़ा[र०] की कब्र की ज़ियारत को जाती थीं और वहाँ नमाज़ पढ़ती थीं और रोती थीं। इसके अतिरिक्त हजरे इस्माईल (इस्माईल–शैल) में जनाब इस्माईल[अ०] और जनाबे हाजिरा की क़ब्रों के होते हुए वहाँ नमाज़ की श्रेष्ठता आई है और इब्ने असीर ने 'निहाया' में लिखा है:

मक़बरों में नमाज़ से रोक इस लिए हुई है की वहाँ की मिटटी में बहुत से मुर्दों के शरीर से निकली हुई गीली गंदगियाँ मिली हुई होती हैं।'' वरना अगर किसी पाक साफ जगह नमाज़ पढ़े तो कोई बुराई नहीं है।''

ऐसा ही मुहदिदस फतनी ने 'मजमउल बिहार' में लिखा है और इतना बढ़ाया है।

''यह रोक खास उन कब्रों से है जो खुदी हुई हों।''

इसके अलावा क़ब्रों के पास नमाज़ पढ़ने के मना होने (हराम होने) की दलील यदि इस तरह दी जाए कि क़ब्रों को मस्जिद नहीं बनाना चाहिए तो इस पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है और इसका सबूत इब्ने हिबान की सहीह से भी मिलता है जिसमें यह मिलता है कि नबी[स०] ने कब्रों की ओर नमाज़ पढ़ने से मना किया है और इमाम अहमद इब्ने हम्बल ने पैग़म्बरे[स०] ख़ुदा से रिवायत की है कि आपने फरमाया क़ब्रों पर बैठो नहीं और क़ब्रों की ओर नमाज़ न पढ़ो।

इसके बाद उन हदीसों के बारे में कोई शक बाक़ी नहीं रहता और नेक लोगों की क़ब्रों के पास बरकत के लिए नमाज़ पढ़ना पहले के नेक लोगों में बराबर चलता रहा और कुरआन की आयतों से भी इसकी पुष्टि होती है। कुरआन में हुक्म है कि: "इब्राहीम के खड़े होने की जगह को अपनी नमाज़ का स्थान बनाओ।" और अब्दुल्लाह बिन उमर हजरत पैग़म्बरे ख़ुदा की निशानियों को ढूंढते थे और वहाँ नमाज़ें पढ़ते थे। और इब्ने तैमिया ने 'सिरातममूस्तकीम' में लिखा है जैसा कि औराक़े वग़दादिया में दिया है कि सिन्दी रवाँरज़्मी का बयान है:

हमने इमाम अहमद बिन हंबल से पूछा कि क्या

कोई व्यक्ति उन पाक स्थानों पर जो बने हुए हैं इस विषय में आप क्या कहते हैं? उन्होंने कहाः इब्ने मकतूम की हदीस है, उन्होंने खुदा के रसूल से पूछा कि वह अपने घर में नमाज़ पढ़ा करें कि नमाज़ का एक केन्द्र होजाय और इब्ने अब्बास का काम कि वह दोनों रवायतों के आधार पर उन पाक पुनीत जगहों पर भी जाकर नमाज़ पढ़ने में कोई हरज नहीं है मगर लोगों ने अति से बहुत काम लिया है और इसमें बहुत बढ़ौती कर दी है।'

इसी प्रकार अहमद बिन क़ासिम ने उनसे बयान किया है कि उनसे पूछा गया उन पाक स्थानों पर जाने के सम्बन्ध में जो मदीने में हैं तो उन्होंने कहा किः

"इब्ने मकतूम की हदीस और अब्दुल्लाह बिन उमर के कार्य के आधार पर जो वो रसूल की निषानियों (जैसे ठहरने के स्थान) पर नमाज़ें पढ़ते थे इसमें कोई बुराई नहीं है और इसकी आज्ञा है।"

"अल–आलामुल इलामि बैतुल्लाहिल हराम" में लिखा है कि जनाबे खदीजा के मकान को अक़ील इब्ने अबी तालिब ने ले लिया फिर उनसे मुआविया बिन अबू सुफ़ियान ने ख़रीदा और उसे मस्जिद बना दिया कि उसमें नमाज़ पढ़ी जाए। इस प्रकार मालूम हुआ कि नबियों और नेक लोगों की क़ब्रों पर नमाज़ पढ़ना धर्म क़ानून से जायज़ है और इसके हराम होने पर कोई दलील नहीं है बल्कि नेक लोगों के चलते इसके अच्छा होने का पता देता है।

ये कहना कि क़ब्रों पर चिराग़/दीपक जलाना मना है, इब्ने अब्बास की उस रिवायत के आधार पर कि रसूल ने लानत की क़ब्र की ज़ियारत करने वालियों और उन्हें मस्जिद बनाने वालों और चिराग़ जलाने वालों पर। इसके सम्बन्ध में यह कहना है कि अगर बिना किसी सही उद्देश्य के चिराग़ जलाया जाए तो इसकी रोक हो सकती है लेकिन अगर वह ज़ियारत करने वालों की आसानी या कुरआन, दुआ और ज़ियारत पढ़ने वालों के लिए जलाया जाए तो वह अच्छे काम में मदद है, उन पर हर्गिज़ नबी की लानत नहीं हो सकती। चूमने और दुआ के बारे में सुबूत पहले भी आ चुके हैं। इस पर भी ज़्यादा यह है कि इब्ने तैमिया ने "सिराते मुस्तक़ीम" में लिखा है कि अबूबक्र असरम ने रवायत की है किः

"मैंने अहमद बिन हम्बल से क़ब्रे रसूल के साथ तमस्सुह के बारे में पूछा, उन्होंने कहा कि मुझे इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है। मिम्बर के बारे में सवाल किया, उन्होंने कहा कि इसके लिए रिवायत आई है कि अब्दुल्लाह बिन उमर मिम्बर को चूमते थे और सईद बिन मुसय्यब का अमल भी बयान किया गया है।"

इससे स्पष्ट है कि इमाम अहमद बिन हम्बल ने भी रसूल की क़ब्र के लिए यह दुस्साहस नहीं किया कि उससे तमस्सुह को हराम कहें। बस यह कहा कि मैं नहीं जानता जबकि हर व्यक्ति समझ सकता है कि जब मिम्बर से तमस्सुह का सुबूत मिल गया तो रसूल की क़ब्र तो मिम्बर से अधिक आदरणीय है। और क़ब्र के बारे में जो उनका कथन बयान हुआ कि मैं इस बारे में जानता नहीं, यह देखने में उस रावी (रिवायत करने वाले) की भूल है या यह व्यक्ति विष्वास के योग्य नहीं था इसलिए इमाम अहमद बिन हम्बल ने उससे खुलकर बात नहीं की। इसलिए कि सैयद हसन सद्र[र०] ने अपनी पुस्तिका में लिखा है इमाम अहमद बिन हंबल के बेटे अब्दुल्लाह बिन अहमद ने जिन का कहना स्पष्ट है, अपने बाद के बारे में विश्वसनीय है, "किताबुल इलल व सुआलात" में लिखा है किः

"मैंने अपने बाप से उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछा जो रसूल[स०] के मिम्बरे को बरकत के लिए छुए और उसे चूमे और यही क़ब्र के साथ करे इस उम्मीद के साथ कि उसे सवाब मिलेगा, उन्होंने कहा कि कोई बुराई नहीं है।"

इसी प्रकार इब्ने तैमिया ने यहया बिन सईद की रिवायत लिखी है कि जब वह इराक़ की ओर जाने लगे तो मिम्बर की ओर आए और उसे हाथ से छुआ और दुआ मांगी। और इमाम मालिक से

दोहराया गया है कि वह मिम्बरे रसूल से बरकत हासिल (प्राप्त) करते थे। और सब्की ने कहा कि रसूल[स०] की पाक क़ब्र से तमस्सुह (हाथ से छूकर बदन पर लगाना) से निषिद्धता (रोक) पर कोई इजमाई (एकमत–निर्विरोध) नहीं है और इस रिवायत से तर्क किया है कि मरवान इब्ने हकम ने देखा कि एक व्यक्ति रसूल[स०] की क़ब्र से लिपटा हुआ है तो मरवान ने उसकी गरदन पकड़ ली और कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा कि मैं पत्थरों और ईटों की ओर नहीं आया हूँ। मैं रसूल की सेवा में आया हूँ और यह व्यक्ति अबू अय्यूब अन्सारी थे और ऐसा ही बिलाल रसूल[स०] के मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाले) के सम्बन्ध में आया है कि उन्होंने अपना मुँह रसूल की क़ब्र की मिट्टी से मला, और यह प्रचलन मुसलमानों में रसूल[स०] के समय से रहा।

हाँ ज़बह (धर्म विधि के अनुसार जानवर को हलाल करना/काटना) और नज़्र (मनौती) अगर अल्लाह का नाम लेकर न हो और अल्लाह के निकट होने की नीयत से न हो तो हम भी उस ज़बह को हलाल नहीं समझेंगे और न ही उस नज़्र को सही समझेंगे मगर यदि अल्लाह का नाम लेकर किसी रौज़े के ज़ायरों को बांटने के लिए ज़बह करें तो उसमें कोई ख़राबी नहीं है। इसी तरह अगर अल्लाह से उस रोज़े के जायरों की कुछ सेवा के लिए नज़्र करें तो भी इसके हराम होने के कारण नहीं है।

यह कहना कि दुआ के समय नबी के रौज़े की ओर मुँह करने से रोकना अच्छा है और सभी दिशाओं से अच्छी काबे की दिशा है, यह पैग़म्बरे खुदा के स्तर के न जानने या उससे आँख मूंद लेने का मुआवेज़ा है

रसूल के बारे में सही विश्वास – आस्था रखने वाले उलमा जैसे अली बिन बुरहानुददीन शाफ़ई ने इनसानुल उदून में और अल्लामा सुयूती, अपनी किताब "ख़साइसे कुबरा" में साफ़ साफ़ लिखते है कि:

'' रसूल[स०] की क़ब्र की भूमि सब ज़मीन के टुकड़ों यहाँ तक कि काबे की ज़मीन से भी बढ़कर है और कुछ लोगों ने कहा है कि आसमान के भी हर स्थान से यहाँ तक कि अर्श से भी बढ़कर है।"

तवस्सुल की चर्चा में क़ाज़ी अय्याज़ की रवायत आचुकी है कि मन्सूर दवानिक़ी (एक अब्बासी खलीफ़ा) ने इमाम मालिक से पूछा कि मैं क़िब्ले की ओर मूँह करके दुआ माँगू या रसूल[स०] की क़ब्र की ओर? तो उन्होंने कहा:

आप अपना चेहरा रसूल[स०] की ओर से क्यों फिराते है जबकि वह आपका भी वसीला (माध्यम) और आपके बाप (हज़रत आदम[अ०]) का भी।''

अल्लामा मुहक़्क़िक़ (शोधकारी) कमाल बिन हमाम ने खुल कर कहा है:

"पाक क़ब्र की ओर मुँह करना क़िबले की ओर मिम्बरे मुँह करने से बेहतर है।"

और अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने "जौहरे मुनज़्ज़म" में इस पर यह तर्क दिया है कि हम सब एकमत इस पर हैं कि:

" हज़रत (स.अ.व.स.) अपनी क़ब्र में ज़िन्दा हैं और अगर हमारी आंखों के सामने जिन्दा बैठे होते तो आपके पास मुलाक़ात के लिए आने वाला निष्चित ही आपकी ओर मुँह और काबे की ओर पीठ करता तो ऐसा ही हज़रत की क़ब्र की ज़ियारत के समय होना चाहिए।"

तवाफ़ (परिक्रमा) तमस्सुह और चूमने के लिए जो कुछ कहा गया उस पर चर्चा बहुत पहले हो चुकी है। अब्दुल्लाह बिन अहमद बिन हंबल की ज़बानी इमाम अहमद बिन हंबल जिनकी ओर इब्ने अब्दुल वहाब और सभी नज़दी लोग और उनके लीडर इब्ने तैमिया और इब्ने कैयिम सबका लगाव है उनका कथन आ चुका है कि रसूल[स०] की क़ब्र को चूमने में कोई बाधा नहीं है। सामने की बात है कि मरने के बाद क़ब्र को चूमना वैसा ही है कि जैसे जीवन में हाथों या पैरों को चूमना क्यों कि दोनों का आधार एक ही है याने आदर सत्कार और सम्मान अबुदाऊद की सुनन में अब्दुल्लाह बिन उमी की ज़बानी है कि हम लोग

रसूल[स०] के पास गये और आप के हाथों को चूमा और उम्मे अबान बिन्ते वाज़ि बिन ज़ारि' की रिवायत अपने दादा ज़ारि से है जो अब्दुल क़ैस कुल क़बीले के प्रतिनिधि मण्डल में आये थे कि जब हम पहुँचे तो अपनी अपनी सवारियों से जल्दी जल्दी उतर के रसूल के हाथों और पैरों को चूम रहे थे इसे अतिरिक्त रसूल के आदर के क्रम चूमने के दूसरे सादय भी पहले आचुके हैं।

अब अल्लाह का शुक्र (धन्यवाद) है कि मदीने के उलमा इस फ़तवे की धज्जियाँ उड़ चुकी हैं और साबित हो गया है कि क़ब्रों पर गुम्बद का निर्माण और उनका आदर सम्मान के हराम या शिर्क होने का कोई कारण नहीं है, बल्कि पैग़म्बर[स०] की सीरत, सहाबा का चलन और सभी मुसलमानों में ये कार्य जो शुरू से अब तक रहा है। जो इन इमारतों को ध्वस्त करें या ध्वस्त करने का समर्थक हो वह अहले सुन्नत के परिमाणिक शब्द अनुसार जमाअत से बाहर होने के कारण दीन से भी बाहर है।

छठा अध्याय

नज्द वालों के बारे में कुछ हदीसें और खबरें:

इनमें से सहीह बुख़ारी में है कि "हज़रत पैग़म्बर[स०] मिम्बर के बग़ल में खड़े हुए और फ़रमाया: उधर से फितना (बिगाड़) होगा जहाँ से शैतान का सींग निकलेगा" या फरमाया "जिधर से सूरज की किरण निकलती है।"

दूसरे वाक्य से तो साफ है कि आपका इशारा पूरब की ओर था, हाँ पहले वाक्य में हदीस के शब्द से इस्पष्ट हैं, पता नहीं चलता आप का संकेत किस ओर था। मगर इसकी व्याख्या दूसरी हदीस से हो जाती है जो अब्दुल्लाह बिन उमर से है कि उन्होंने रसूल[स०] से सुना जबकि आप पूरब की ओर मुँह किए हुए थे कि आप[स०] कह रहे थे। "मालूम होना चाहिए कि फ़ितना (बिगाड़) उधर से उठेगा जिधर शैतान का सींग है" इससे पता चल गया कि हज़रत का इशारा पूरब की ओर था और सब लोग जानते हैं कि मदीने से पूरब की ओर नज्द की ज़मीन है।

दूसरी हदीस सहीह मुस्लिम में है कि: "दिलों की कठोरता और बेवफ़ाई (अनिष्ठा) पूरब में है और ईमान (विश्वास/आस्था) हिजाज़ (वह क्षेत्र जिसमें मक्का और मदीना आते हैं) वालों में है।"

हज़रत ने इन हदीसों में साफ़ बता दिया कि तुलना में हिजाज़ वाले ईमान वाले होते हैं और नज्द के लोग दिल के कठोर (क्रुर) ओर बेरहम होते हैं मगर ये वहाबी लोग उलटा ही बताते हैं कि केवल नज्द वाले ही बस मोमिन हैं और बाक़ी हिजाज़ वाले और पूरी दुनिया के मुसलमान काफ़िर और मुशरिक हैं। फिर यदि किसी को शक हो कि पूरब से हज़रत की मुराद (आशय) नज्द है या कोई और देश तो उसके लिए हम सहीह बुखारी की एक और हदीस बयान करते हैं। इब्ने उमर की रिवायत है कि:

"पैग़म्बर[स०] ने कहा कि पालने वाले हमारे शाम में (समृद्धि) दे कर, हमारे यमन में बरकत अता कर। तो लोगों ने कहा कि यह भी कह दीजिए कि हमारे नज्द में बरकत दे तो हज़रत ने फिर वही कि हमारे शाम में बरकत प्रदान कर और हमारे यमन में बरकत प्रदान कर। दोनों वाक्य कहे। लोगों ने कहा या रसूल अल्लाह और हमारे नज्द में भी। रावी (बयान करने वाला) कहता है कि मुझे ख़याल है कि तीसरी बार हज़रत ने जवाब दिया कि वहाँ तो ज़लज़ले हैं फ़ितने हैं और वहाँ से शैतान का सींग निकलेगा।"

इस हदीस से जहाँ यह पता चलता है कि नज्द की ज़मीन शैतान के वर्चस्व का केन्द्र है वहाँ यह भी स्पष्ट है कि यह ज़मीन खुदा व रसूल को पसंद नहीं है। इसलिए कि रसूल[स०] ने लोगों के कहने पर भी उसे भलाई की अपनी दुआओं में शमिल नहीं किया। और इससे मालूम होता है कि अल्लाह की रहमत दया इस ज़मीन से हमेशा के लिए दूर है। यह हदीस अहले सुन्नत की किताबों में भी है जैसा कि हवाला आपके सामने

(बाकी पेज नं० *10* पर)